Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 6.471
Volume - 6, Issue - 3, March - 2023 Publication Date: 31/03/2023

DOIs:10.2018/SS/202303006 --:-- Research Paper / Article / Review

जैन दर्शन में अहिंसा

माहिमाइ माण्डि

असिस्टेंट प्रफेसर, दर्शनशास्त्र, बर्धमान राज कालेज, पूर्व बर्धमान, पश्चिम बंगाल, भारत

ईमेल- mahimaimandi@gmail.com

सारांश : भारतीय दर्शन में भगवान महावीर की मूल शिक्षा है अहिंसा। अहिंसा का अर्थ है प्रेम। किसी को न सताना, न मारना और प्रणीमात्र को दुख न देना ही अहिंसा है। अहिंसा एक महान शक्ति है। जिसमें लोगों को वश में कर लेने की शक्ति है। जैन दर्शन में अहिंसा एक मूलभूत सिद्धांत है जो अपनी नैतिकता की आधारशिला का गठन किया गया है। शाकाहार और जैनों की अन्य अहिंसक प्रथाओं अहिंसा के सिद्धांत से प्रवाहित हो रहा है। जैन दर्शन में पंच महाव्रत के पहला व्रत हि अहिंसा है।

मुख्य विन्दुः नैतिकता, अहिंसा, पंच महाव्रत ।

१. प्रस्तावना :

अहिंसा का सामान्य अर्थ है 'हिंसा न करना'। इसका व्यापक अर्थ है – किसी भी प्राणी को तन, मन, कर्म, वचन और वाणी से कोई नुकसान न पहुँचाना। मन में किसी का अहित न सोचना, किसी को कटुवाणी आदि के द्वार भी नुकसान न देना तथा कर्म से भी किसी भी अवस्था में, किसी भी प्राणी कि हिंसा न करना, यह अहिंसा है। जैन धर्म एवं हिन्दू धर्म में अहिंसा का बहुत महत्त्व है। जैन धर्म के मूलमंत्र में ही अहिंसा परमो धर्म: अहिंसा परम (सबसे बड़ा) धर्म कहा गया है।

२. हिन्दू शास्त्रों में अहिंसा :

हिंदू शास्त्रों की दृष्टि से "अहिंसा" का अर्थ है सर्वदा तथा सर्वदा (मनसा, वाचा और कर्मणा) सब प्राणियों के साथ द्रोह का अभाव । अहिंसा के भीतर इस प्रकार सर्वकाल में केवल कर्म या वचन से ही सब जीवों के साथ द्रोह न करने की बात समाविष्ट नहीं होती, प्रत्युत मन के द्वारा भी द्रोह के अभाव का संबंध रहता है। योगशास्त्र में निर्दिष्ट यम तथा नियम अहिंसामूलक ही माने जाते हैं। यदि उनके द्वारा किसी प्रकार की हिंसावृत्ति का उदय होता है तो वे साधना की सिद्धि में उपादेय तथा उपकार नहीं माने जाते। "सत्य" की महिमा तथा श्रेष्ठता सर्वत्र प्रतिपादित की गई है, परंतु यदि कहीं अहिंसा के साथ सत्य का संघर्ष घटित होता है तो वहाँ सत्य वस्तुत: सत्य न होकर सत्याभास ही माना जाता है। कोई वस्तु जैसी देखी गई हो तथा जैसी अनुमित हो उसका उसी रूप में वचन के द्वारा प्रकट करना तथा मन के द्वारा संकल्प करना "सत्य" कहलाता है, परंतु यह वाणी भी सब भूतों के उपकार के लिए प्रवृत्त होती है, भूतों के उपघात के लिए नहीं। इस प्रकार सत्य की भी कसौटी अहिंसा ही है। इस प्रसंग में वाचस्पति मिश्र ने "सत्यतपा" नामक तपस्वी के सत्यवचन को भी सत्याभास ही माना है, क्योंकि उसने चोरों के द्वारा पूछे जाने पर उस मार्ग से जानेवाले सार्थ (व्यापारियों का समूह) का सच्चा परिचय दिया था। हिंदू शास्त्रों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय (न चुराना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह, इन पाँचों यमों को जाति, देश, काल तथा समय से अनवच्छिन्न होने के कारण समभावेन सार्वभौम तथा महाव्रत कहा गया है (योगवूत्र 2। 31) और इनमें भी, सबका आधारा होने से, "अहिंसा" ही सबसे अधिक महाव्रत कहलाने की योग्यता रखती है।

३.पंच महाव्रत: महत्वपूर्ण व्रत अहिंसा :

जैन धर्म के 23 वें तीर्थंकर पाशर्वनाथ ने चार महाव्रत बताये तथा 24 वे तीर्थंकर महावीर स्वामी ने पांचवा महाव्रत ब्रह्मचर्य जोङा । तथा पंच महाव्रतों का जैन धर्म में विकास किया। दीक्षा लेने वाला व्यक्ति प्रतीज्ञापुर्वक कहता है कि हे अरिहंत मैं वचन – काया से हिंसा, असत्य, चोरी , भोगविलास तथा परिग्रह का सेवन न तो खुद करुंगा और न किसी से करवाऊंगा। हे प्रभु इन पांचों महाव्रतों का जीवन पर्यंत पालन करने की मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।

पंच महाव्रत निम्नलिखित हैं-

1. अहिंसा-

अहिंसा जैन धर्म का सर्वाधिक महत्वपूर्ण नैतिक गुण है। किसी भी जीव की हिंसा न करना ये धर्म की मूल नैतिक शिक्षा है। जैन दर्शन मानता है कि प्रत्येक जीवात्मा इस संसार में उच्चतम् चेतना प्राप्ति हेतु सर्वदा प्रयास कर रहे है। जैन साधु ये विश्वास रखते हैं कि हमें किसी भी प्राणी की हत्या करने का कोई हक नहीं है।

2. सत्य – सत्य मुख्यतः वचन की पवित्रता से सम्बन्धित है। जो वस्तु जिस रूप में विद्यमान है, उसे उस रुप में कहना हि सत्य वचन का अर्थ है। सत्य वचन हितकारी होना चाहिए। अहिंसा के बिना सत्य की खोज संभव नहीं है। जिस व्यक्ति में अहिंसा और सत्य की गुणों का समवेश हो जाता है वह निरंतर सफलता प्राप्त करता चला जाता है।

3. अस्तेय- अस्तेय व्रत का अर्थ है किसी को सम्पत्ति को बिना आज्ञा और इच्छा के ग्रहण न करना की प्रतिज्ञा।

4. ब्रह्मचर्य- ब्रह्मचर्य का अर्थ है समस्त वासनाओं का त्याग करना। इसके पालन से इन्द्रियों नियन्त्रित हो जायेगा। जीव आसक्ति, लोभ, मोह आदि से दूर रहेगा। जैन साधुओं को पूरी तरह से ब्रह्मचर्य का पालन करना पङता है। उनके नियम काफि सतर्कता भरे होते हैं। साधुओं के लिए स्री चाहे वह किसी भी उम्र की हो तथा साध्वी के लिए पुरुष चाहे वह किसी भी उम्र का हो उवके लिए विजातीय स्पर्श निषिद्ध हैं।

5. अपरिग्रह- अपरिग्रह व्रत का अर्थ है किसी वस्तु पर आसक्त होकर उसके अनावश्यक संग्रह न करना।

४. जैन शास्त्रों में अहिंसा :

जैन धर्म में सब जीवों के प्रति संयमपूर्ण व्यवहार अहिंसा है। जैन दर्शन में जीव का लक्षण चेतना है। अहिंसा का शब्दानुसारी अर्थ है, हिंसा न करना। इसके पारिभाषिक अर्थ विध्यात्मक और निषेधात्मक दोनों हैं। रागद्वेषात्मक प्रवृत्ति न करना, प्राणवध न करना या प्रवृत्ति मात्र का विरोध करना निषेधात्मक अहिंसा है; सत्प्रवृत्ति, स्वाध्याय, अध्यात्मसेव, उपदेश, ज्ञानचर्चा आदि आत्महितकारी व्यवहार विध्यात्मक अहिंसा है। संयमी के द्वारा भी अशक्य कोटि का प्राणवध हो जाता है, वह भी निषेधात्मक अहिंसा हिंसा नहीं है। निषेधात्मक अहिंसा में केवल हिंसा का वर्जन होता है, विध्यात्मक अहिंसा में सक्रियात्मक सक्रियता होती है। यह स्थूल दृष्टि का निर्णय है। गहराई में पहुँचने पर तथ्य कुछ और मिलता है। निषेध में प्रवृत्ति और प्रवृत्ति में निषेध होता ही है। निषेधात्मक अहिंसा में सत्प्रवृत्ति और सत्प्रवृत्यात्मक अहिंसा में हिंसा का निषेध होता है। हिंसा न करनेवाला यदि आँतरिक प्रवृत्तियों को शुद्ध न करे तो वह अहिंसा न होगी। इसलिए निषेधात्मक अहिंसा में सत्प्रवृत्ति की अपेक्षा रहती है, वह बाह्य हो चाहे आँतरिक, स्थूल हो चाहे सूक्ष्म। सत्प्रवृत्यात्मक अहिंसा में हिंसा का निषेध होना आवश्यक है। इसके बिना कोई प्रवृत्ति सत् या अहिंसा नहीं हो सकती, यह निश्चय दृष्टि की बात है। व्यवहार में निषेधात्मक अहिंसा को निष्क्रिय अहिंसा और विध्यात्मक अहिंसा को सक्रिय अहिंसा कहा जाता है।

जैन ग्रंथ आचारांग - सूत्र में, अहिंसा का उपदेश इस प्रकार दिया गया है : भूत, भावी और वर्तमान के अर्हत् यही कहते हैं-किसी भी जीवित प्राणी को, किसी भी जंतु को, किसी भी वस्तु को जिसमें आत्मा है, न मारो, न (उससे) अनुचित व्यवहार करो, न अपमानित करो, न कष्ट दो और न सताओ।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति, ये सब अलग जीव हैं, उस सबसे चेतना है। पृथ्वी आदि हर एक में भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व के धारक अलग-अलग जीव हैं। उपर्युक्त स्थावर जीवों के उपरांत त्रस (जंगम) प्राणी हैं, जिनमें चलने फिरने का सामर्थ्य होता है। ये ही जीवों के छह वर्ग हैं। इनके सिवाय दुनिया में और जीव नहीं हैं। जगत् में कोई जीव त्रस (जंगम) है और कोई जीव स्थावर। एक पर्याय में होना या दूसरी में होना कर्मों की विचित्रता है। अपनी-अपनी कमाई है, जिससे जीव अन्न या स्थावर होते हैं। एक ही जीव जो एक जन्म में अन्न होता है, दूसरे जन्म में स्थावर हो सकता है। त्रस हो या स्थावर, सब जीवों को दु:ख अप्रिय होता है। यह समझकर मुमुक्षु सब जीवों के प्रति अहिंसा भाव रखे। जीव की चेतना नैसर्गिक रूप से अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन और अनंत शक्ति के साथ युक्त है।

सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। इसलिए निर्ग्रंथ प्राणिवध का वर्जन करते हैं। सभी प्राणियों को अपनी आयु प्रिय है, सुख अनुकूल है, दु:ख प्रतिकूल है। जो व्यक्ति हरी वनस्पति का छेदन करता है वह अपनी आत्मा को दंड देनेवाला है। वह दूसरे प्राणियों का हनन करके परमार्थत: अपनी आत्मा का ही हनन करता है।

५. निष्कर्ष :

अगर परिवार में, समाज में, सर्वोपरि विश्व में शांति बनाई रखनी है तो हमें अहिंसा के मूल्य समझना होगा और उसे अपने जीवन में अपनाना होगा। उसका कारण है अहिंसा में रहने वाली प्रेम की शक्ति। प्रेम शक्ति लोगों को वश में कर लेने, मेल बन्धन करने की

शक्ति है। अहिंसा को लेकर हमारा जो आदर्श वाक्य है वो है –'अहिंसा परमो धर्मः धर्म हिंसा तथैव च ' ये श्लोक महाभारत का है।इसका अर्थ है अहिंसा ही मनुष्य का परम धर्म है और जब धर्म प संकट आये तो उसकी रक्षा करने के लिए की गई हिंसा उससे भी बड़ा धर्म है।

संदर्भ :

1. डॉ शोभा निगम- भारतीय दर्शन, प्रकाशक- मोतिया बनारसीदास, नई दिल्ली, चतुर्थ संशोधित संस्करण : 2011
2. प्रो॰ हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रकाशक- मोतिलाल बनरसीदास, 2016
3. डॉ राधाकृष्णन् – भारतीय दर्शन भाग-1, राजपाल एंड सन्स पब्लिशर्स, 2015
4. https://www.jainkosh.org